श्रीमद् भगवद्गीता और अवसादमुक्ति

डॉ. वत्सला
व्याख्याता (संस्कृत)
राजकीय स्नाताकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड़

काव्य, जय, भारत, महाभारत, कार्ष्णवेद, शतसाहस्री संहिता प्रभृति अभिधानों से अभिहित महाभारत के भीष्मपर्वान्तर्गत वेदव्यास की वाणी से निःसृत एवं हस्तामलों से लेखनीबद्ध श्रीमद्भगवद्गीता ऐसा अक्षय वृक्ष है जिसका जितना पारायण, निर्वचन किया जाये, नित नूतन ज्ञान, भक्ति कर्म इत्यादि के विविध आयाम प्रकट होते हैं। इस ग्रंथ की सार्वभौमिकता, सार्वकालिकता, सार्वदैशिकता, सार्वजनीनता, शाश्वतता अक्षर (कालजयी) है। लीलानियन्ता, अप्रतिम नीतिविशारद, भक्तवत्सल, पुराणपुरुष, शरणागतरक्षक, भगवंदश के रूप में द्यावा पृथिवी व्यापीनी विधाता के सृष्टिक्रम में भूतल पर आगत भगवान श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से उद्भूत, महासमर के रणाङ्गण में, विषाद, व्याामोहग्रस्त अर्जुन के विनिगमकत्व को न प्राप्त होने पर धर्मार्थ एवं सत्यार्थ उद्बोधित एवं त्रिकाल में प्रस्तुत ऐसी गीर्वाणवाणी है, जिसमें जितना अवगाहन किया जाये, वह अनिर्वाच्य प्रतीत होती है।

सम्प्रति वैश्वीकरण, भौतिकतावादी संस्कृति, संचारक्रान्ति, वैज्ञानिक एवं तकनीकी उन्नति के युग में मानव का जीवन नाना अपेक्षाओं, महत्वाकांक्षाओं (अर्थ, पदप्रतिष्ठा, सम्मान, कीर्ति, ख्याति) की प्राप्ति - अप्राप्ति के बीच उत्पन्न नाना विकारों के दलदल में धँसा जा रहा है। बालक, युवा, वृद्ध सब की स्थिति दिग्भ्रमित सी है। सन्तोषं परमं सुखं, जीवन मूल्य मानों विशीर्ण हो गये हैं। नासूर की तरह पनपते विकारों के कारण (इन्द्रियजनित) मानव का जीवन अवसाद एवं तनाव से आपूर्यमाण हो गया है। विकारग्रस्त मानवजीवन के परित्राणार्थ गीता का उपदेश ही श्रेयस्कर साधन है, इसमें कोई विप्रतिपत्ति नहीं है।

आज का समाज संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। आपा- धापी के युग में प्रत्येक मानव का जीवन तीन विकारों से संत्रस्त है - Tension (तनाव), Frustration (अलगाव), Depression (अवसाद)। तीनों विकारों में से अवसाद की स्थिति वस्तुतः भयावह है। त्रिविध विकारों से मुक्ति का साधन - भगवद्गीता है। 'अवसाद' शब्द की व्युत्पत्ति अव+सद+घञ् प्रत्यय करने से निष्पन्न हुई है जिसका अर्थ - उदासी, मूर्च्छा, सुस्ती, बर्बादी या विनाश है। अवसाद आज हमारे देश की प्रमुख समस्या बन गयी है। प्रत्येक प्राणी इससे पीड़ित है। जिस फल प्राप्ति की तितिक्षा मानव को होती है, उस ईप्सित फल (लक्ष्य, प्रयोजन, उद्देश्य) की अप्राप्ति होने पर अवसाद की स्थिति उत्पन्न होती है। इस स्थिति से निवृत्ति का हेतु एकमात्र श्रीमद् भगवदगीता ही है।

श्री मद्भगवतद्गीता के अष्टदशाध्यायान्तर्गत भगवान श्री कृष्ण ने विविध योगों का निरूपण किया है । अध्यायों का नाम अवेक्षणीय है - अर्जुनविषाद योग, सांख्य योग, कर्मयोग, ज्ञानकर्मसंन्यास योग, कर्मसंन्यास योग, आत्मसंपन्न योग, ज्ञानविज्ञान योग, अक्षरब्रह्मयोग, राजविद्याराजगुह्ययोग, विभूति योग, विश्विरूपदर्शन योग, भक्तियोग, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विभाग योग, गुणत्रयविभाग योग, पुरुषोत्तमयोग, दैवासुरसम्पद्विभागयोग, श्रद्धात्रयविभाग योग, मोक्षसंन्यास योग। इन अध्यायों में प्रख्यापित योगों, का हमारे दार्शनिको, मनीषियों, चिन्तकों, गीतानुरागियों, भगवद्रत्कपा वाचकों, साधु-सन्तों, विद्वानों ने अनेकत्र अनेकशः विवेचन किया है। कतिपय निदर्शन अवलोकनीय हैं बालगंगाधर तिलक, स्वामी विवेकानन्द, चाणक्य, सर्वपल्ली राधाकृष्णन् , विनोबा भावे, स्वामी अड़गड़ानन्द प्रभृति न जाने कितने महापुरुषों ने अपने कर्णामृत सदुपदेशों से मानव प्राणियों का कल्याण किया है। यदि मानव केवल कर्मयोग, भक्तियोग एवं ज्ञानयोग को भी अपने जीवन में आत्मसात् कर ले, तो आज भूतलपरिव्याप्त अवसाद की समस्या का अनतिविस्तार नहीं होगा।

कर्मयोग – कर्मयोग का सर्वतोभावेन रूप है निष्काम कर्म। फल की अभिलाषा से रहित होकर किया जाने वाला कर्म। प्राणिमात्र की स्पर्धा केवल ऐसे कर्म करने की होती है जिसका फल उसे प्राप्त हो, किन्तु ऐसा होना हर कालावधि, हर परिस्थिति में असंभव है। प्रारब्ध (अदृष्ट) के अनुसार कर्मफल की प्राप्ति का विधान हमारे धर्मग्रंथों में प्रतिपादित है, किन्तु अविद्या (अज्ञान) वश मानव को इसका भान नहीं होता और फल की अप्राप्ति पर प्राणी निराशा एवं अवसाद से ग्रसित हो जाता है। निष्काम कर्मयोग को ही भारतीय दर्शन में अनासक्ति योग कहा गया है। यह निष्काम कर्म विविध रूपों जैसेः-मानवसेवा, समाजसेवा आदि के रूप में भी प्रकट होता है जिससे समाज एवं राष्ट्र का मार्ग भी उन्मीलित होता है और अहिंसा, समता, करुणा, प्रेम, भाईचारा, सद्भाव, सौहार्द इत्यादि नानाविध गुणों का विकास होता है। कर्मयोग मानवजीवन के विकास (उन्नति, कर्मठता) की आधारशिला है। इसे अपने जीवन पथ पर क्रियान्वित करने की आवश्यकता है। भगवान् श्री कृष्ण ने कहा हैः-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्माणि।। 2/48

भक्तियोग – अनासक्त (अनिर्लिप्त) भाव से निष्काम एवं निरन्तर जो शुद्धप्रीति है, वही भक्ति है। भक्ति का बीज प्रेम है। जब यही प्रेम साधना की उच्चतम भावभूमि (पराकाष्ठा की सीमा) पर पहुँच जाता है, तो भक्ति कहलाता है। भक्ति की प्राप्ति होने पर समस्त स्थावर जङ्गम जगत् भक्त का प्रेमपात्र हो जाता है और सम्पूर्ण संसार उसे अपने स्वरूप की भाँति भासित होने लगता है। इस प्रकार की 'आत्मस्वरूप' भक्ति को ही भगवान् अपनी परम भक्ति कहते हैः-

'भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्।। 18 /55

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्।। 18/56

इस प्रकार भगवान् की शरणागतिस्वरूपा भक्ति का मार्ग यद्यपि सुसाध्य तो नहीं है, पर निरन्तर अभ्यास से दुःसाध्य भी नहीं है। इस भक्तियोग (भगवद्भक्ति) द्वारा भी मानव अपने को तनाव एवं अवसाद से परे रख सकता है। जब कृत्याकृत्य समस्त भक्ति के अधीन होगा, तब किसी प्रकार का विकार भी जाग्रत नहीं होगा और ''सन्तोष एव पुरुषस्य परं निधानं'' का भाव सर्वदा अन्तरात्मा में विद्यमान होगा।

ज्ञानयोग- शास्त्र ज्ञानयोग का केन्द्र है। ज्ञानी साधक शास्त्रों के ज्ञान से सत् को जान कर उसको साध्य मान कर ज्ञान, ध्यान, योगादि क्रियाओं के द्वारा अर्थात् इन क्रियाओं को साधन बना कर साधना करता है। ध्यानयोगादि क्रियाओं द्वारा एवं नवें अध्याय में प्रतिपादित राजयोग के अभ्यास तथा जीवन जीने की कला के माध्यम से मानव के अवसादग्रस्त न होने का अभियान पूरे देश में सतत सक्रिय है। ज्ञान साधना से अज्ञान का अन्त होता है। मोक्षप्राप्त्यर्थ आत्मतत्व के ज्ञान की आवश्यकता है, क्योंकि आत्मज्ञान मूल सर्वयोग हैः-

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे।। 2/ 20

आत्मा की नित्यता एवं सर्वव्यापकता को समझ कर इससे उत्पन्न होने वाले कष्टों को सत्य न मान कर जीवन-यापन करने वाला प्राणी आधिभौतिक दुःखों से निवृत्त हो सकता है। आज की परम आवश्यकता इसी सत्य को आत्मसात् करने की है।

वास्तव में गीता जीवन जीने की कला है। इसमें प्रतिपादित ज्ञान, भक्ति तथा कर्म के समन्वय से प्राणी का जीवन संतुलित होता है। सामयिक लाभ-हानि, जय-पराजय, प्राप्ति- अप्राप्ति की प्रभावान्विति का परिणाम उसके मनोबल, आत्मबल तथा मानसिक संतुलन को विचलित नहीं कर सकते। गीता का पारायण करने वाला प्राणी कभी भी अपने जीवन में हताशा, निराशा एवं अवसाद का शिकार नहीं हो सकता। अष्टादश अध्यायों में प्रतिपादित विभिन्न प्रकार के योगों को अपनी जीवनपद्धति में उतार कर जीवन को संयमित, संतुलित एवं व्यवस्थित किया जा सकता है।